2002

तित्थयर

वर्ष २० : अंक ८ दिसम्बर १९९६

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष २० : अंक ८

दिसम्बर १९९६

□

संपादन

राजकुमारी बेगानी

लता बोथरा

□

आजीवन : एक हजार रुपये

वार्षिक शुल्क : पचपन रुपये

प्रस्तुत अंक : पाँच रुपये

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,

कलकत्ता-७०००७

दूरभाष : २३८२६५५

□

मुद्रक

अनुप्रिया प्रिन्टर्स

६ ए, बड़ौदा ठाकुर लेन

कलकत्ता-७

सूची

केशर-क्यारी में महकता जैन दर्शन	२२९
श्रावक-जीवन	२४०
प्राकृत जैन कथा साहित्य	२४४
राजा सम्प्रति	२५१
प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य	२५४
संकलन	२५८

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं है, जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है। जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

NAHAR

Interior Decorator

5/1, Acharya Jagadish Chandra Bose Road

CALCUTTA-700 020

Phone : 247-6874 Resi. : 244-3810

केशर-क्यारी में महकता जैन दर्शन

श्रीमती लता बोथरा

वर्तमान युग में जैन संस्कृति और काश्मीर ये दो शब्द अलग-अलग धारा के प्रतीत होते हैं जबकि प्राचीन काल में जैन संस्कृति के वैशिष्ट्य में काश्मीर का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जैन दर्शन की आध्यात्मिक सम्पदा काश्मीर की भूमि में किस प्रकार पुष्पित व पल्लवित हुई, यह जानने के लिये काश्मीर के इतिहास की पर्तों को खोलना आवश्यक है। काश्मीर के इतिहास को जानने का प्रमुख उपलब्ध स्रोत कवि कल्हण कृत राजतरंगिणी (ई० सन् ११४८—४९) है। इतिहासकार जेनुल ने काश्मीर के इतिहास पर लिखी गयी पन्द्रह राजतरंगिणियों की खोज का उल्लेख किया है परन्तु दुर्भाग्यवश आज इनमें से एक भी उपलब्ध नहीं है अतः आज हमें काश्मीर के इतिहास के विषय में जो भी सामग्री मिलती है वो कल्हण कृत राजतरंगिणी से ही मिलती है। कवि कल्हण ने इसकी रचना का उद्देश्य अपने इस श्लोक में किया है—

"दृष्टं दृष्टं नृपोदितं बद्धवा प्रभयमि यूषाम् ॥
अर्वाकाल भवेर्वार्ता तन्प्रवन्धेषु पूर्यत ॥१:९॥
दाक्ष्यं कियदिदं तस्मादस्मिन् भूतार्थं वर्णने।
सर्व – प्रकारं स्खलिते ये जिनाय ममाधमः ॥१:१०॥

अर्थात्—जिन लेखकों ने अपने समय के नृपों का इतिहास लिपिबद्ध किया है उसके बाद इस काल के लिये और क्या बात रह जाती है जो आपके इस नूतन प्रबन्ध में पूर्वकारों से विशेष है? इस बात के समाधान में कवि कहते हैं कि— यह प्रबन्ध लिखने की मेरी योजना यह है कि मैं पूर्ण सर्वांगीण क्रमबद्ध इतिहास उपस्थित करूँ जो पुरातन इतिहास की स्खलना से विशृंखलित है। (१:९-१०)[१]

सारांश कल्हण के शब्दों में कहा गया है कि यह राजतरंगिणी काश्मीर के इतिहास को क्रमबद्ध प्रमाणिक रूप से उपस्थित करती है।

प्राचीन काल से काश्मीर को तीन नाम से जाना जाता रहा है। (१) हिमाद्रिकुक्षी (२) सतिसार (३) काश्मीर। हिमाद्रिकुक्षी का अर्थ है हिमालय पर्वत की गोद में अवस्थित जनपद। सुदूर उत्तर में काश्मीर घाटी का सिरमौर है हिन्दुकुश पर्वत। फिर इस हिन्दुकुश से प्रारम्भ होती है काश्मीर की पर्वत शृंखला जिनके ब्रह्मशिखर, हर मुकुट पर्वत, महादेव पर्वत, चंदनवन, नाग पर्वत आदि नाम हैं।

ये किंवदन्ती है कि काश्मीर का नाम सतिसर देवताओं ने दिया था। अंग्रेज इतिहासकार बर्नियर ने काश्मीर नाम को काश्यप ऋषि से जुड़ा माना है। सतिसार पर राज्य करने वाले नीलनाग काश्मीर को बसाने वाले कश्यप ऋषि का पुत्र था। कल्हण अपनी राजतरंगिणी में सिन्धु नदी को उत्तर गंगा का नाम देते हैं। इसी के नजदीक में प्राचीन तीर्थस्थल नन्दीक्षेत्र पड़ता है जो आज नन्दकोट के नाम से जाना जाता है अन्य तीर्थ अमरनाथ, सरत्शिला तथा सिद्धपंथ (सीडनदर्रा) ये नाम किस संस्कृति से जुड़े हैं यह अध्ययन का विषय है।

१. जैनों की मान्यता है कि सरस्वती का मूल स्थान काश्मीर है। कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य (सोममुनि) ने देवी सरस्वती की आराधना के लिये अपने गुरु आचार्य देवचन्द्रसूरी जी से काश्मीर जाने की आज्ञा प्राप्त की थी क्योंकि उस समय काश्मीर शिक्षा संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र था तथा सरस्वती को ज्ञान तथा विद्या की देवी माना जाता है। कल्हण ने भी राजतरंगिणी में इसकी पुष्टि की है कि काश्मीर में ही सरस्वती का मूल स्थान है।

"मेदगिरे शृंगे गंगोद मेद शुचौ स्वयम्।
सरोऽन्तदृश्येत यं च हँस—रुपो सरस्वती॥
(कल्हण राजतरंगिणी—३५)

अर्थात्—गंगा स्त्रोत से पावन मेदगिरी के शिखर पर स्थित सरोवर में देवी सरस्वती हंस रूप में दिखलायी देती हैं।

प्राचीन काल में देश-विदेश के विद्वान लोग काश्मीर में शिक्षा ग्रहण करने आते थे। श्री आनन्द कौशल अपनी पुस्तक "The Kashmiri Pandit" में लिखते हैं—"भारत भर में पुरातन काल से ही काशी और काश्मीर शिक्षा के लिये विख्यात थे। परन्तु काश्मीर काशी से आगे निकल गया था। काशी के विद्वानों को अपनी शिक्षा पूरी करने काश्मीर आना पड़ता था। आज भी काशी के लोग बच्चों को अक्षर ज्ञान समारोह के समय, पवित्र जनेऊ सहित काश्मीर दिशा की ओर सात पग चलने को कहते हैं। पवित्र धागा काश्मीर जाने और वहाँ से लौटने का प्रतीक माना जाता है।" काश्मीर की भूमि भारतीय संस्कृति की उद्गम स्थली रही है। ह्वेनसाँग तथा ओऊकाँग ने भी काश्मीर में जाकर वहाँ संस्कृत का अध्ययन किया था।

ह्वेनसाँग ने लिखा भी है 'काश्मीर के लोग शिक्षा प्रेमी तथा सुसंस्कृत हैं। काश्मीर में शिक्षा के लिये शताब्दियों से आदर व प्रतिष्ठा रही है।' प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान नागार्जुन का आश्रय स्थल काश्मीर था। वैष्णव संत रामानुज को शास्त्रार्थ करने के लिये दक्षिण से काश्मीर की लम्बी यात्रा करनी पड़ी थी। शंकराचार्य तथा कुमारिल भट्ट की काश्मीर यात्रा भी इसी सन्दर्भ में थी।

प्रसिद्ध इतिहासकार अलबरुनी के अनुसार—'काश्मीर हिन्दू विद्वानों की सबसे बड़ी पाठशाला है। दूरस्थ और निकटस्थ देशों के लोग यहाँ पढ़ने आते थे।' मुगल राजकुमार दाराशिकोह ने भी काश्मीर जाकर संस्कृत का अध्ययन किया था।

जैन शास्त्रों के अनुसार भगवान महावीर की पट्ट परम्परा के आचार्य बाददेवसूरिजी ने काश्मीर में वदि सागर ब्राह्मण को पराजित किया था।[१]

प्रारम्भ से ही काश्मीर विद्वानों की भूमि रहा है तथा यहाँ की भूमि ने अनेक दिग्विजयी विद्वान उत्पन्न किये। ये विद्वान पंडित कहलाए। अतः ज्ञान की भूमि की जातीय पहचान ही पंडित के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। पंडित शब्द काश्मीर की विरासत है जो ज्ञान तथा शिक्षा का प्रतीक है तथा जैन मान्यता का समर्थन भी करता है कि सरस्वती का मूल स्थान काश्मीर में है।

२. वि० की १५वीं शताब्दी में जैनाचार्य श्री रत्नशेखर सूरि श्राद्ध विधि प्रकरण में काश्मीर में शत्रुंजयावतार तीर्थ की स्थापना से सम्बन्धित विवरण देते हैं—यह घटना पाँचवें तीर्थंकर श्री सुमतिनाथ से पहले की है—

मल्लदेश के राजा जितारि के मन में विमलागिरी महातीर्थ की यात्रा करने की उत्कृष्ट इच्छा हुई तथा उसने भावनावश प्रतिज्ञा की कि जब तक विमलाचल तीर्थ नहीं पहुँचूगा तब तक अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगा। चलते-चलते राजा संघ समेत काश्मीर के एक वन में पहुंचा। भूख व प्यास लगने पर भी राजा ने अपना अभिग्रह भंग नहीं किया। रात में विमलाचल के अधिष्ठायक देव ने स्वप्न में प्रकट हो राजा से कहा कि—'हे राजा मैं तुम्हारी भक्ति से सन्तुष्ट होकर मैं अपनी दिव्य शक्ति से विमलाचल तीर्थ को यहीं ले आता हूँ। प्रातःकाल जब संघ ने प्रयाण किया तो उसी क्षण उक्त यक्ष ने काश्मीर के उस वन प्रदेश में विमलाचल तीर्थ को स्थापित किया। राजा ने भगवान् ऋषभ देव की पूजा व वन्दना की। राजा वहाँ से फिर आगे बढ़ने लगा। वह सात बार आगे बढ़ा लेकिन तीर्थ के आकर्षण से फिर पीछे लौट आता। अन्त में वहीं तीर्थ की तलहटी में विमलपुर नामक नगर बसाकर रहने लगा।

श्राद्ध विधि प्रकरण में ही काश्मीर में शत्रुंजयावतार तीर्थ के पास गांगलि ऋषि के आश्रम का, शुकराज को जाति स्मरण ज्ञान तथा मृगध्वज राजा का वर्णन आता है जिसने ऋषि कन्या कनकमाला संग विवाह किया था।

---

१. श्राद्ध विधि प्रकरण—श्री रत्नशेखर सूरिजी द्वारा अनुवादित।

३. कल्हण की राजतरंगिणी में सत्यप्रतिज्ञ अशोक का वर्णन आता है जो १४४५ ई० पू० में काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठा और उसने जिन शासन को स्वीकार किया था। कल्हण अपनी राजतरंगिणी में सत्यप्रतिज्ञ अशोक का वर्णन करता है—

प्रपौत्र शकुनेस्तस्थ भूपतेः प्रपितृव्यज
अथ वृहदशोकाख्यः सत्यसंघो बसुधराम् १:१०१
यः शांतवृजिनो राजा प्रपन्नो जिनशासनम्
शुष्कलेत्र वितस्तात्रो विस्तार स्तूपमंडलैः १:१०२
धर्मारण्य विहाराम्नचिनास्तत्र पुरे अभवत्।
यत्कृतं चैत्यमुत्सावधि प्राप्त्येक्षम क्षणम् १:१०३

अर्थात् —तत्पश्चात् (निःसंतान राजा शचीनर के बाद) राजा शकुनी के प्रपौत्र सत्यप्रतिज्ञ अशोक महान् ने (काश्मीर की) वसुन्धरा (पृथ्वी) पर राज्य किया। जब उसने जिन शासन को स्वीकार किया था तब उसके पाप शान्त हो गये थे। शुष्कलेत्र तथा वितस्तात्र इन दोनों नगरों को उसने (जैन) स्तूप मंडलों से आच्छादित कर दिया था। अनेक जैन मन्दिरों तथा नगरों का निर्माण किया। जिनमें से विस्तात्रपुर के धर्मारण्य बिहार में इतना ऊँचा जैन मन्दिर बनवाया था कि जिसकी ऊँचाई को आँखें देखने में असमर्थ हो जाती थी।'

कल्हण के अनुसार सत्यप्रतिज्ञ अशोक का समय नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ के मध्य का है। वह काश्मीर के राजवंश का ४७वां शासक हुआ जिसने ७२ वर्ष तक राज्य किया।[१] श्रीनगर को इसी ने बसाया व जैन मत का प्रचार किया। वराहमिहिर ने भी लव आदि उसके पूर्वजों का वर्णन किया है। अशोक का पुत्र राजा जलोक व उसके बाद उसका भतीजा राजा जनेह जो गद्दी पर बैठा था दोनों जैन धर्मावलम्बी थे। इसके पश्चात् ललितादित्य राजा बना जो उदार व सहृदयी था। यह भगवान महावीर व बुद्ध का समकालीन था। इसने भी अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण किया था। इसने हिन्दू व बौद्ध मन्दिर भी बनवाये थे। इसके आदेश से इसके मन्त्री चडःकुण ने तुखार में एक विशाल जैन स्तूप का निर्माण कराया था।

राजा कय्य भी जैन धर्मानुयायी था। जिसने एक अद्भुत जैन मन्दिर बनवाया था जिसमें तेजस्वी सर्वज्ञ मित्र नाम का एक जैन भिक्षु रहता था।

---

(१) बाबू हरिश्चन्द्र—इतिहास समुदाय पृष्ठ—१८

४ मेजर जनरल फर्लांग के अनुसार तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का विहार काश्मीर में हुआ था।

५. चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर के काश्मीर जाने का वर्णन श्री माल पुराण में मिलता है—

'तस्य तप प्रभावन किंचित जैन प्रवर्तते
महावीरो यदा जातो देशे काश्मीर के यदा
ततः पभति मारम्भ जैन धर्म प्रवर्तते
इदृशं जैन धर्म च वर्तते स्वलप मात्र कम।' १

६. विशाल साम्राज्य निर्माता व शक्तिशाली सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य व उसके वंशजों के समय भारत ही नहीं वरन् भारत के बाहर भी जैन धर्म की विद्यमानता के प्रमाण मिलते हैं। सिकन्दर का भारत आक्रमण तथा भारत से कल्याण नाम के जैन मुनि को लेकर जाना इस बात का द्योतक है कि उस समय युनान में भी जैन धर्म का प्रभाव था। मौर्य सम्राटों के साम्राज्य का विस्तार काश्मीर में भी था तथा सम्राट सम्प्रति ने काश्मीर व पश्चिमी प्रान्तों में जैन धर्म का प्रचार किया था। अधिकतर मौर्य सम्राट अशोक के अलावा क्योंकि जैन धर्मानुयायी थे अतः उनके राज्य काल में जैन धर्म एक प्रभावशाली धर्म रहा था। नेमिनाथ देवगढ़ मन्दिर नं २८ गुप्तकालीन

७. मौर्य काल के पश्चात् जो प्रमाण काश्मीर में जैन धर्म सम्बन्धी उपलब्ध होता है वो है कलिंगाधिपति खारवेल महामेघवाहन का जो उड़ीसा के चेदीवंश के राजा क्षेमराज के पौत्र तथा बुद्धिराज के पुत्र थे। ई० पू० १७३ में ये गद्दी पर बैठे। उड़ीसा की उदयगिरी व खण्डगिरी की गुफाएँ जो उस सदी की है तथा गवाह है उस ऐतिहासिक घटना की जो यह प्रमाणित करती है कि मगध देश के राजा नन्द (वीर निर्माण सं० ७०) ने उड़ीसा पर आक्रमण कर कलिंग जिन की प्रतिमा को उठा ले गया और अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में जैन मन्दिर का निर्माण करा उसमें इस प्रतिमा को स्थापित किया था। यही प्रतिमा कलिंग जिन के नाम से प्रसिद्ध हुई। शताब्दियों बाद खारवेल मेघवाहन ने मगध पर आक्रमण कर विजय प्राप्त कर वहाँ से इसी प्रतिमा को लाकर पुनः एक विशाल मन्दिर में विराजमान किया। उड़ीसा में खण्डगिरी उदयगिरी में प्राप्त शिलालेख में महाराज मेघवाहन के विषय में उनके राज्यकाल में १३वें वर्ष तक का वर्णन है उसके बाद के उनके जीवन का परिचय काश्मीर के इतिहास

---

(१) श्री माल पुराण सं० ७३ श्लोक २६३०

लेखक कवि कल्हण ने राजतरंगिणी में किया है। 'राजतरंगिणी में सिर्फ मेघवाहन का ही नहीं वरन् उनकी चार पीढ़ियों तक का वर्णन मिलता है उनका प्रपौत्र उज्जैन के राजा विक्रमादित्य का समकालीन था।' १

खारवेल मेघवाहन का उड़ीसा में जन्म हुआ। ई० पू० १७३ में वह राजगद्दी में बैठा। पश्चात् ४ वर्ष राज्य करके परलोक सिधारा। ई० पू० १६१ यानि अपने राज्य के बारहवें वर्ष में महामेघवाहन ने उत्तरापथ में काश्मीर आदि पर विजय पाकर वहाँ भी अपनी राजसत्ता स्थापित की इसके बाद इसका पुत्र श्रेष्ठसेन जो तुंगीन के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ राजगद्दी पर बैठा। उसके बाद तोरमाण तथा उसके पुत्र प्रवरसेन ने राज्य किया। इस प्रकार मेघवाहन से लेकर चार पीढ़ियों तक जैन राजाओं ने काश्मीर में शासन किया। के० राधाकृष्ण मुखर्जी लिखते हैं—

"काश्मीर ने सम्राट मेघवाहन जैसे दिग्विजयी सम्राट उत्पन्न किये जिसकी सैनिक वाहिनियों ने आधे विश्व को विजय किया और विजित प्रदेशों को एक शर्त पर वापिस किया कि वहाँ पर प्राणी हिंसा नहीं होगी····· २

श्री नरेन्द्र सहगल मेघवाहन की प्रशंसा में लिखते हैं—"प्राणी रक्षा हेतु स्वयं की बलि को प्रस्तुत होने वाला मेघवाहन अपने आदर्शों से काश्मीर को ऊँचा उठा ले गया।" अहिंसा का ये उत्कृष्ट उदाहरण मेघवाहन की काश्मीर विजय तथा उसके जिन धर्मी होने का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। मेघवाहन परम अहिंसक, पशुबलि का सख्त विरोधी था।

८. ईसाइयों के धार्मिक प्रवर्त्तक ईसामसीह की जीवनी में १२ वर्ष का समय अंधकार का माना जाता है। ई० १९वीं सदी के अन्तिम चरण में रूसी यात्री निकोलाई नोटाविच को काश्मीर तिब्बत सीमा पर लद्दाख के बौद्ध लामाओं से सुरक्षित हस्तलिखित कुछ ऐसे दस्तावेज मिले जिनमें ईसा के इन वर्षों के निवास व क्रियाकलापों का वर्णन है। निकोलाई नोटाबिच के ग्रन्थ के आधार पर फेबर केसर ने 'Jesus died in Kashmir' नामक ग्रन्थ में ईसा के इन वर्षों का वृत्तान्त दिया है। जिसके अनुसार इनमे से कुछ वर्ष ईसा ने काश्मीर में बिताए थे तथा यहीं से उन्होंने अहिंसा, दया, समता व करुणा का ज्ञान प्राप्त किया था। अन्तिम समय उनकी मृत्यु काश्मीर में हुई थी तथा

---

(१) हीरालाल दूगड़—मध्य एशिया और पंजाब में जैन धर्म।

(२) परिशिष्ट अशोक ले० १८६२ के० राधाकृष्ण मुखर्जी।
काश्मीर की सांस्कृतिक धरोहर—नरेन्द्र सहगल

वहीं उनकी समाधि है। स्वामी शिवानन्द सरस्वती ने अपनी पुस्तक योग से रोग निवारण में भी इसका उल्लेख किया है। कुछ वर्ष पूर्व स्टेट्समेन अखबार में भी इसी विषय पर लेख प्रकाशित हुआ था। Discovery of India में ईसा के विषय में नेहरू जी भी लिखते हैं—

'यह साफ नहीं मालूम होता कि अपना प्रचार शुरू करने से पहले ईसा क्या करते थे या कहाँ गए थे। मध्य एशिया भर में, काश्मीर में, लद्दाख में, तिब्बत में ·····अभी तक लोगों को यह पक्का विश्वास है कि यीशु या ईसा इन देशों में घूमे थे।

ईसामसीह के विचारों पर जैन धर्म की छवि स्पष्ट दिखलायी पड़ती है। जो काश्मीर से उन्हें विरासत में मिली। क्योंकि काश्मीर में जैन धर्म का प्रभुत्व था।

९. कुषाण राजाओं के साम्राज्य में काश्मीर भी आता था तथा कुषाण राजा उदार व धार्मिक थे। कनिष्क के समय में मथुरा के कंकाली टीले में मिली अनेकों जैन मूर्तियाँ स्तूप तथा आयाग पट्ट इस बात के साक्षी हैं कि कुषाण राजाओं के समय में जैन धर्म अत्यन्त प्रभावशाली था। अनेक विदेशी इतिहासकार कनिष्क को बौद्ध धर्मी मानते हैं लेकिन मथुरा में मिली जैन प्रतिमाओं तथा कुषाण कालीन अनेक मूर्तियों की प्राप्ति से यह प्रमाणित हो जाता है कि कुषाण राजा उदार धार्मिक नीति के थे तथा उनके समय में जैन धर्म का सर्वत्र प्रचार था। जैन धर्म को उनका संरक्षण भी प्राप्त था। क्योंकि काश्मीर उनके साम्राज्य का एक हिस्सा था अतः इस युग में काश्मीर में जैन धर्म की प्रधानता होना स्वाभाविक है।

१०. गुप्त वंश के प्रमुख सम्राट समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य आदि वैदिक धर्मानुयायी माने जाते रहे हैं लेकिन इन राजाओं के काल में जैन और बौद्ध धर्म फलते-फूलते रहे जिसका स्पष्ट उदाहरण अजन्ता एलोरा की गुफाओं की कृतियाँ तथा गुप्त काल में निर्मित अनेक जैन मूर्तियाँ हैं। अतः गुप्त कालीन साम्राज्य में काश्मीर में जैन धर्म की विद्यमानता बनी रही होगी ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

११. उद्योतनसूरीजी अपने ग्रन्थ कुवलय माला में लिखते हैं कि गुप्त सम्राट को पदच्युत करने वाले हूण सम्राट तोरमाण के गुरु हरिभद्रसूरिजी थे। तोरमाण उनका अनन्य भक्त था। उसका पुत्र मिहिरकुल भी जैन धर्म से प्रभावित था। उसने काश्मीर को विजित किया था तथा वहाँ जैन धर्म के प्रभाव का विस्तार किया था। उसकी राजधानी जम्मू के निकट पव्वइया नगरी थी।

१२. १२वीं शताब्दी में परमार्हत कुमारपाल सोलंकी जैन धर्मी राजा थे तथा उनके गुरु कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरि थे। इनकी राजधानी पाटण थी तथा राज्य विस्तार काश्मीर सिन्धु तथा तुर्किस्तान तक था। कुमारपाल राजा ने अपने सारे राज्य में अमारी घोषणा करायी थी तथा जो प्रचार-प्रसार अशोक ने बौद्ध धर्म के लिये किया वही कुमारपाल ने जैन धर्म के लिये किया था। अतः उनके समय में काश्मीर में जैन धर्म का प्रचार व प्रसार निरन्तर बना रहा।

१३. कवि कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में अनेक लोगों के नाम दिये हैं जो पशुबलि, नरबलि, प्राणीबध तथा हिंसा के सख्त विरोधी तथा अहिंसक थे जैसे (१) अनंगपाल (२) अनन्तदेव (३) अमृतप्रभा (४) अनन्ती वर्मन (५) बुद्धराज (६) सिद्धराज आदि ये सब राजा अहिंसक थे जो इनके जैन होने का संकेत है।

१४. काश्मीर में जैन मन्दिरों तथा तीर्थों की यात्रा करने के लिए भारत के अनेक नगरों से यात्री संघों के आने के उल्लेख भी मिलते हैं उदाहरण के लिये 'पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास' नामक ग्रन्थ में आचार्य श्रीदेवगुप्तसूरि ने लिखा है—

नवसौ ने बाड़ोतरे (६७२) गढ चर कोई न आयो गाज।
विषमी वाट संचेती हाप्यो ने फाठयो हरराज॥
मारवाड़ मेवाड़, सिन्ध धरा सौरठ सारी।
काश्मीर कांगरु, गवाड़, गिरनार गांधारी॥
चन्द्रभान नाम युग-युग·····पारखो

अर्थात—विक्रम संवत् ६७२ में श्वेताम्बर जैन श्रावक ओसवाल वंश में संचेती गोत्रीय चन्द्रभान ने रणथम्भौर से एक बहुत बड़ा संघ जैन तीर्थों की यात्रा के लिये निकाला तथा संघ ने जैन तीर्थों की यात्रा करते हुए पंजाब, सिन्ध कांगड़ा, काश्मीर, गांधार आदि अनेक तीर्थों की यात्रा की।

वि० १३२० में पेथड़शाह जो माण्डवगढ़ निवासी था ने अपने गुरु श्री धर्मघोषसूरि के उपदेश से प्रभावित होकर ८४ प्रमुख नगरों में ८४ जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था। उसने काश्मीर में भी जैन मन्दिर निर्मित कराया था। तथा मन्दिरों की प्रतिष्ठा आचार्य धर्मघोष सूरि द्वारा करायी थी। वि० सं० १२७५ से १३०३ में परमार्हत जैन धर्मानुयायी महामान्य वस्तुपाल व तेजपाल दोनों भाइयों ने भी सिन्ध, पंजाब तथा काश्मीर में जैन मन्दिरों का निर्माण तथा जीर्णोद्धार भी कराया था।

१५. कल्हण अपनी राजतरंगिणी में गणपति के स्वरूप के विषय में भी जैन मत की पुष्टि करते हैं। जैन धर्म में अर्हंत के शिष्यों को ही उनकी संतान माना जाता है और गणधर तीर्थंकर के मुख्य शिष्य होते हैं। ऋग्वेद के अनुसार 'गणानां त्वा गणपति' (ऋग्वेद २:२३:१) अर्थात गणपति अथवा गणेश का अर्थ गणों का अध्यक्ष।

"श्लाघ्यः स एव गणवान्—राग द्वेष बहिष्कृतः।
भूतार्थ कथने यस्य स्थेपरस्येव सरस्वती।"

अर्थात—वही गणपति (गणवान) श्लाघनीय है जिसकी वाणी राग द्वेष का बहिष्कार करने वाली तथा एक न्यायमूर्ति के समान भूत कालीन घटनाओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती हो। इस प्रकार काश्मीर में जैन धर्म का सिर्फ प्रभाव ही नहीं वरन् वहाँ की संस्कृति में जैन धर्म की ही छाप थी जिसके परिणाम स्वरुप वहाँ पर गणपति शब्द के वही अर्थ लिये जाते थे जो जैन धर्म में हैं।

१६. सम्राट अकबर के समय में भी हमें काश्मीर में जैन धर्म सम्बन्धी विवरण प्राप्त होते हैं। सम्राट अकबर जैन दर्शन व मुनियों से अत्यन्त प्रभावित थे। Bhendarhas Commemoration Vol-1 Pg 26 पर लिखे वक्तव्य से यह सिद्ध होता है कि आचार्य हीरविजयसूरीजी महाराज ने अकबर बादशाह को जैन धर्म में प्रतिबोधित किया तथा बादशाह ने उनको जगतगुरु की पदवी से विभूषित किया था। दीन-ए-इलाही की रचना उन्होंने जैन धर्म से प्रभावित होकर ही की थी। जिनचन्द्रसूरि अकबर प्रतिबोध रास के अनुसार सम्राट अकबर के आमन्त्रण को स्वीकार कर सूरिजी ने वाचक महिमराज को गणि समयसुन्दर आदि छः साधुओं के साथ अपने से पूर्व ही लाहौर भेजा था। लाहौर में सम्राट इनसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। सम्राट के पुत्र सलीम (जहाँगीर) सुरत्राण के एक पुत्री मूल नक्षत्र में हुई थी जो अत्यन्त अनिष्टकारी थी। इस अनिष्ट का परिहार करने के लिये सम्राट की इच्छानुसार महिम राजजी ने अष्टोत्तरी शान्तिस्नात्र करवाया।

काश्मीर की विजय यात्रा के समय सम्राट की इच्छा को मान देते हुए आचार्य श्री ने वाचक महिमराज को हर्षविशाल आदि मुनियों के साथ काश्मीर भेजा। काश्मोर के प्रवास में वाचक महिमराज की अवर्णनीय उत्कृष्ट साधुता और प्रासंगिक एवं मार्मिक चर्चाओं से अकबर अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसीका फल था कि वाचकजो की अभिलाषानुसार गजनी, गोलकुण्डा और काबुल पर्यन्त अमारि (अभयदान) उद्घोषणा करवायी और मार्ग में आगत अनेक स्थानों (सरोवरों) के जलचर जीवों की रक्षा करायी। उन्होंने काश्मीर विजय के पश्चात श्रीनगर में सम्राट को उपदेश देकर आठ दिन की अमारी उद्घोषणा करायी थी।

शुभ दिनई रिपुबल हेलि भेजी नयर श्री पुरि उतारि।
आभारी तिहां दिन आठ पाली देश साधी जयवरी।
श्री पुर नगर आई, आमारि गुरु पलाई।
मछली सबई छोराई, नीकउ भमल भइयारी।१

कु० पृ० ३९२

अकबर की काश्मीर विजय के सन्दर्भ में एक और प्रसंग है। अकबर की विद्वत्सभा में किसी दार्शनिक के आगम के सम्बन्ध में व्यंग्य करने से कि आगम के प्रत्येक सूत्र के अनेक अर्थ होते हैं इसके जवाब में कवि समयसुन्दरजी ने अपने शासन की सुरक्षा और प्रभावना····· के लिये आठ अक्षरों पर आठ लाख अर्थों की रचना की तथा इस ग्रन्थ का नाम अर्थ रत्नावली रखा। श्रावण शुक्ल १३ वि० सम्वत् १६४६ को सायं को जिस समय अकबर ने काश्मीर विजय के लिये श्री राज श्री रामदास वाटिका में प्रथम प्रवास किया था वहीं सब राजाओं, सामन्तों और विद्वानों की परिषद में कवि ने अपना यह नूतन ग्रन्थ सुनाया····· विद्वानों के सम्मुख ही अकबर ने इस ग्रन्थ को प्रमाणिक ठहराया।२

अकबर के दरबारी अबुल फजल ने कहा है—"काश्मीर में सर्वाधिक आदरणीय वर्ग ऋषियों का है यद्यपि उन्होंने पूजा के परम्परागत रीति-रिवाजों को नहीं त्यागा फिर भी वे सच्चे भक्त हैं वे दुनिया की वस्तुओं की इच्छा नहीं रखते, वे मांस नहीं खाते, वे विवाह नहीं करते। इन ऋषियों ने काश्मीर की भूमि को वास्तव में स्वर्ग बना दिया। इनके उपदेशों में स्वार्थ का स्थान नहीं था। व्यवहार में आडम्बर नहीं और उद्देश्यों में कालिमा नहीं थी। यह एक वास्तविकता है कि एक मात्र जैन साधु ही त्यागी, संयमी तथा आडम्बर-हीन होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि कल्हण ने राजतरंगिणी में ई० सन् से पूर्व १४४५ वर्ष से सत्यप्रतिज्ञ अशोक के समय से विक्रम राजा के काल तक काश्मीर में जैन धर्म सम्बन्धी इतिहास का उल्लेख किया है। जैनाचार्य रत्नशेखर सूरि ने श्राद्धविधि प्रकरण में तो प्राग्वैदिक काल में पाँचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ से भी पहले यहाँ जैन धर्म होने का वर्णन किया है जिसका उल्लेख शत्रुंजयावतारके प्रसंग में आया है कुमारपाल राजा तथा अबुलफज़ल के वर्णनों से यह स्पष्ट होता है कि पाँचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ के समय से ईसा पू० १५वीं शताब्दी तथा उसके बाद ईसा की १५वीं शताब्दी तक काश्मीर में जैन धर्म की प्रधानता विद्यमान थी।

---

१. अगरचन्द नाहटा, भँवरलाल नाहटा—समयसुन्दर कृति कुसुमावली
२. वही

काश्मीर में जैन धर्म का ह्रास

११वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक अनेक मुसलमान बादशाहों ने भारत पर अनेक बार आक्रमण किये तथा यहाँ की संस्कृति तथा मन्दिरों को ध्वंस किया। सन् १३९६ से १४१६ के समय सुल्तान सिकन्दर लोदी ने (बुतकिशन) जितने भी जैन, बौद्ध, हिन्दू ग्रन्थ थे सब अग्नि की भेंट चढ़ा दिये या जल समाधि देकर नष्ट कर दिये। तैमूर ने भारत से वापिस लौटते समय काश्मीर को बुरी तरह से लूटा तथा बचे खुचे मन्दिरों को ध्वंस कर दिया। यही कारण है कि मुस्लिम इतिहासकार जेनुलाब्दी द्वारा पता लगायी गयी १५ राजतरंगणियों में आज एक भी उपलब्ध नहीं है। ये समय काश्मीर के इतिहास का भयंकर काल था। सभी मन्दिर मूर्तियाँ नष्ट कर दिये गये थे। ब्राह्मणों के ग्यारह घर छोड़कर सभी को मुसलमान बना दिया गया। जो लोग धर्म पर दृढ़ रहे उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया और बच्चों को काबुल ले जाकर कट्टर मुसलमान बना लिया गया। आज भी काबुल में एक ओसवाल-भावड़ा-पठान नाम की जाति है। ओसवाल जाति को पंजाब, काश्मीर में भावड़ा कहते थे और इसमें एक गोत्र पठान था। (ओसवालों में पठान गोत्र का उल्लेख खरतर-गच्छयति श्री पालजी ने अपनी जैन सम्प्रदाय शिक्षा नामक पुस्तक के पृष्ठ ६५९ में गोत्रों की तालिका में गोत्र नं० ३१९ संख्या में किया है।)

सम्राट औरंगजेब जो कट्टर मुसलमान था उसने भी यहाँ जो बचे-खुचे मन्दिर व ग्रन्थ थे उनको भी नष्ट कर दिया इस प्रकार काश्मीर से जैन धर्म का अस्तित्व ही मिटा दिया गया। जो काश्मीर जैन धर्म संस्कृति से सहस्त्रों पीढ़ी तक प्रभावित रहा वहाँ से आज प्रायः जैन धर्म लुप्त प्रायः हो गया।

आज जैन संस्कृति का काश्मीर के इतिहास में योगदान का उचित मूल्यांकन तभी हो सकता है जबकि भारतीय संस्कृति की विकृत अवस्था को पुष्ट करने में जुटे हुए भारतीय पुरातत्व विभाग में सुधार हो।●

स्व० नरेन्द्र सिंह जी बैद
की पुण्य स्मृति में

–मीरा बैद
८३-बी, विवेकानन्द रोड,
कलकत्ता-७००००६
फोन : २४१-०७१९

श्रावक जीवन

पूर्वानुवृत्ति

दोनों मुनिवरों के साथ साथ धनद भी उपाश्रय गया। गुरुदेवश्री को वंदन कर गद्‌गद् स्वर में वह बोला : हे पूज्यवर, आपके शिष्य के प्रभाव से ही अंगार सुवर्ण बन गया है। वह सारा का सारा सुवर्ण आपका है।
मेरे पर कृपा कर मुझे फरमायें कि मैं उस सुवर्ण का कैसे व्यय करुँ ?

आचार्य भगवंत ने कहा—'महानुभाव, यह तुम्हारा कृतज्ञता-गुण है। तुम एक भव्य जिनालय का निर्माण कर सकते हो !

धनद श्रेष्ठि ने नागपुर में भव्य जिनमन्दिर का निर्माण किया और आचार्यश्री देवचन्द्रसूरीश्वरजी के करकमलों से श्री महावीर भगवन्त की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवायी।

मिथ्यात्व चला जाता है और सम्यग्‌दर्शन गुण आत्मा में प्रकट होता है तब अपूर्व भावोल्लास पैदा होता है। जिस प्रकार कि कोयले को सोना बना देखकर धनद को आनन्द हुआ !

५. सम्यग्‌दर्शन तीव्र कषाय दूर करता है

मिथ्यात्व चला जाता है उसके साथ अनन्तानुबंधी कषाय भी चले जाते हैं। मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषाय साथ-साथ रहते हैं। जहाँ मिथ्यात्व वहाँ अनन्तानुबंधी कषाय और जहां अनन्तानुबंधी कषाय वहां मिथ्यात्व ! अनन्तानुबंधी कषाय यानी क्रोध, मान, माया और लोभ तीव्र कोटि के होते हैं ! आत्मा को अनंत दुःख देनेवाले हैं, अनंतकाल संसार की दुर्गतियों में भटकानेवाले होते हैं। इसलिये वे अनन्तानुबंधी कहलाते हैं।

वैसे ये चार कषाय चार प्रकार के होते हैं—अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याखानी और सज्वलन। सब से ज्यादा तीव्र होते हैं अनन्तानुबंधी कषाय।

- अनन्तानुबंधी क्रोध को पहाड़ की दरार के समान बताया है। यानी पहाड़ फट जाय और दरार पड़ जाय, वह दरार मिटनी कितनी मुश्किल होती है ? क्रोध वैसा होता है अनन्तानुबंधी का।

- अनन्तानुबंधी मान को पाषाण के स्तंभ की उपमा दी गई है। पाषाण का स्तम्भ टूट सकेगा परंतु झुक नहीं सकेगा। अनन्तानुबंधी मान वैसा होता है।
- अनन्तानुबंधी माया, बाँस के मूल जैसी होती है। बांस काटना सरल होता है परन्तु बांस के मूल को काटना अति दुष्कर होता है। अनन्तानुबंधी माया वैसी होती है। लाख जनम बीतने पर भी यह माया दूर नहीं होती है।
- अनन्तानुबंधी लोभ 'कृमिराग' जैसा होता है। कृमिराग ऐसा रंग होता है कि जो रंग धोने पर भी दूर नहीं होता है। कपड़ा फट जायेगा परन्तु रंग नहीं जायेगा। अनन्तानुबंधी लोभ वैसा होता है।

सम्यग्दर्शन आत्मा में प्रगट होने पर नहीं रहता है मिथ्यात्व और नहीं रहता है तीव्र कषाय, तीव्र संक्लेश। तीव्र कषाय दूर होने पर आत्मा में उपशम भाव पैदा होता है। कषायों की समयमर्यादा बंध जाती है। कषाय नहीं करने चाहिये। कषाय बुरे हैं,' यह बात आत्मा में जँच जाती है।

६. सम्ग्दर्शन कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति नहीं बाँधने देता है :

ज्ञानावरण आदि जो आठ कर्म हैं, सभी कर्मों की जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट स्थिति होती है। जघन्य यानी कम से कम और उत्कृष्ट यानी ज्यादा से ज्यादा। जैसे मोहनीयकर्म की उत्कृष्ट स्थिति [काल] जीव ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम को बाँध सकता है। [एक क्रोड़ × एक क्रोड़=एक कोड़ाकोड़ी] परन्तु यह उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यात्वी जीव ही बाँधता है। सम्यग्दर्शन गुण प्रकट होने पर जीव उत्कृष्ट स्थिति नहीं बाँध सकता है। उत्कृष्ट स्थिति बाँधने के लिये अनन्तानुबंधी कषाय चाहिये, जबकि सम्यग्दर्शन होने पर वे कषाय नहीं होते हैं। इसलिये समकितदृष्टि जीव अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम की ही स्थिति बांध सकता है। यानी एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम भी पूरा नहीं · थोड़ा कम !

प्रश्न : 'सागरोपम' का क्या अर्थ ?

महाराजश्री : काल का एक विराट नाप है। जैसे सौ वर्ष, हजार वर्ष····लाख वर्ष, क्रोड़ वर्ष····बोलते हैं वैसे पल्योपम वर्ष, सागरोपम वर्ष बोला जाता है। पल्योपम और सागरोपम आप तभी समझ सकते हैं, जब आपका गणित का विषय अच्छा हो। जिसका गणित अच्छा हो उसको ये नाम समझने चाहिये।

सम्यग्दर्शन का यह एक विशिष्ट प्रभाव है। अशुभ भावों का संयमन करता है। शुभ भावों को जाग्रत करता है।

७. सम्यग्दर्शन शुभ आत्मपरिणाम रूप है।

सम्यग्दर्शन—गुण आत्मा का ही शुभ परिणाम है। परिणाम यानी अध्यवसाय, परिणाम यानी भाव। आत्मा का ही शुभ भाव है। सम्यग्-दर्शन कर्मोदयजन्य नहीं है, आत्मा में से प्रकट होता है। सम्यग्दर्शन का यह शुभ भाव तीन प्रकार का होता है :

—औपशमिक सम्यग्दर्शन

—क्षायिक सम्यग्दर्शन

औपशमिक सम्यग्दर्शन

समग्र भवचक्र में जीव को सर्वप्रथम जो सम्यग्दर्शन प्रगट होता है वह 'औपशमिक' होता है। मिथ्यात्व नष्ट नहीं हो जाता है, अनन्तानुबंधी कषाय नष्ट नहीं हो जाते हैं, शान्त—उपशान्त हो जाते हैं। जितने समय [एक अन्तर्मुहूर्त] तक ये दोनों उपशान्त रहते हैं उतने समय तक सम्यग्दर्शन रहता है। इसको औपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। एक अन्तर्मुहूर्त के बाद पुनः मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषाय उदय में [सक्रिय] आ जाते हैं। सम्यग्दर्शन चला जाता है।

क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन :

मिथ्यात्व के कुछ अंश का क्षय [नाश] होता है और कुछ अंश का उपशम होता है तब जो सम्यग्दर्शन प्रगट होता है उसको क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन हजारों—लाखों वर्ष तक भी रह सकता है। चला जाय तो अल्प क्षणों में भी जा सकता है।

क्षायिक सम्यग्दर्शन :

मिथ्यात्व का संपूर्ण नाश और अनन्तानुबंधी कषायों का संपूर्ण नाश होने पर जो सम्यग्दर्शन गुण पैदा होता है उसको क्षायिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह क्षायिक सम्यग्दर्शन एक बार ही प्रगट होता है, प्रगट होने के बाद कभी जाता नहीं। उस आत्मा में कभी भी मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषाय आते नहीं हैं।

सम्यग्दर्शन का शुभ भाव आत्मा में होता है और उस समय यदि जीव की मृत्यु हो जाती है तो वह सद्गति में ही जाता है। सम्यग्दर्शन का इतना अचिंत्य प्रभाव है।

प्रश्न : क्या सम्यग्दर्शन मनुष्यों को ही होता है या दूसरे जीवों को भी होता है ?

महाराजश्री : चारों गति के जीवों को सम्यग्दर्शन हो सकता है। नारकी के नारक जीवों को, तिर्यंचगति के पशु-पक्षियों को, देवगति के देवों को और मनुष्यों को सम्यग्दर्शन हो सकता है। अपनी मूलभूत बात यह है कि सम्यग्दर्शन के बिना श्रावकधर्म के व्रत नहीं ग्रहण किये जा सकते हैं। व्रत धारण करनेवालों में सम्यग्दर्शन तो होना ही चाहिये। बिना सम्यग्दर्शन ग्रहण किये हुए व्रत निष्फल हो जाते हैं। मिथ्यात्व की आग व्रतों को जला देती है। यानी मिथ्यात्व के साथ व्रतों का भाव आत्माओं में टिक नहीं सकता है।

संयमा नियमाः सर्वे नाश्यन्तेऽनेन पावनाः ।
क्षयकालानलेनेव पादपाः फलशालिनः ।।

'जिस प्रकार फलों से हरे भरे वृक्ष प्रलयकालीन अग्नि से जल कर नष्ट हो जाते हैं वैसे पावनकारी संयम और व्रत वगैरह सब मिथ्यात्व से नष्ट हो जाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि व्रतधारी श्रावक बनना है तो सम्यग्दर्शन होना अनिवार्य है। यह सम्यग्दर्शन आत्मा में है या नहीं, उसके लक्षण बताये गये हैं। यदि पाँच लक्षण हैं···दिखते हैं तो मानना चाहिये कि सम्यग्दर्शन आत्मा में है। ●

सौजन्य से :

ARBEITS INDIA
Export House recognised by Govt. of India
Proprietor : **SANJIB BOTHRA**
8/1, MIDDLETON ROW,
5th Floor, Room No. 4
CALCUTTA-700 001
Phone : 201029/6256/4730
Telex : 021-2333 ARBI IN
Fax No. : 0091-33290174

प्राकृत जैन कथा साहित्य

१. कथाओं का महत्व

डा० जगदीशचन्द्र जैन

पूर्वानुवृत्ति

शकुन—और किसी की भी शपथ खाने को मैं तैयार हूँ, लेकिन इस ऋषि के पाप से लिप्त होना मैं नहीं चाहता।

पक्षियों का यह वार्तालाप सुनकर जमदग्नि ने सोचा कि क्या बात है जो ये पक्षी मेरे पाप को इतना बड़ा बता रहे हैं।

जमदग्नि ने दोनों को पकड़कर पूछा—अरे पक्षियों! देखते नहीं, कितने हजारों वर्षों से मैं कुमार ब्रह्मचारी रहकर तपश्चर्या कर रहा हूँ? मैंने कौनसा पाप किया है जो तुम मेरी शपथ खाने से इन्कार करते हो?

शकुन ने उत्तर दिया—महर्षि! निस्संतान होने के कारण आप नदी जल के वेग से उखड़े हुए निरालंब वृक्ष की भाँति, कुगति को प्राप्त करेंगे। आपका नाम तक कोई न लेगा। क्या यह कुछ कम पाप है? क्या आप अन्य ऋषियों के पुत्रों को नहीं देखते?

यह सुनकर ऋषि अरण्यवास छोड़कर दारसंग्रह के लिए चल दिया।[१]

पंख तोड़ने पर कहानी सुनाने वाला शुक

एक बार किसी भील ने जंगल में से एक शुक को पकड़ा। उसका एक पैर तोड़ और उसकी एक आंख फोड़ उसने शुक को बाजार में छोड़ दिया। शुक आख्यान और कथा-कहानियाँ सुनाने में कुशल था। संयोगवश वह श्रावक पुत्र जिनदास की स्त्री ने उसे मार डालने की धमकी दी। उसने शुक के पंख उखाड़ना शुरू किया।

शुक ने सोचा कि इस तरह मरने से क्या लाभ। अतएव ज्योंही जिनदास की स्त्री उसका पंख उखाड़ती, वह उसे कहानी सुनाता। उसने उसे नाइन, वणिक्कन्या, कोलिन कुलपुत्र की कन्या आदि की ५०० कहानियाँ सुनाईं।

---

१. वसुदेवहिंडी, पृ० २३६

रात्रि व्यतीत हो जाने पर जब शुक के एक भी पंख बाकी न बचा तो जिनदास की स्त्री ने उसे घूरे पर फेंक दिया। वहाँ से उसे बाज उठा ले गया और फिर वह दासीपुत्र के हाथ में आ गया। १

कुतूहल एवं जिज्ञासा

कहानियों में कुतूहल एवं जिज्ञासा पैदा करने की क्षमता का होना आवश्यक है। यदि कहानी सुनने से कुतूहल और जिज्ञासा का भाव जागृत न हो तो वह कहानी नीरस हो जाने के कारण मनोभावों को उद्वेलित करने में अक्षम रहती है।

किसी राजा को कहानी सुनने का शौक था। उसने दूर दूर तक डोंडी पिटवा दी कि जो कोई उसे कभी समाप्त न होनेवाली कहानी सुनायेगा, उसे वह अपना आधा राज्य दे देगा। डोंडी सुनकर दूर-दूर के लोग आये किसी की कहानी एक दिन चली, किसी को दो दिन, किसी की तीन दिन। एक कहानी सुनाने वाला तीस दिन तक कहानी कहता रहा।

राजा की आज्ञा थी कि जिस किसी की कहानी समाप्त हो जायेगी, उसे मृत्युदण्ड भोगना पड़ेगा। इस प्रकार कितने ही लोगों को मृत्युदण्ड दिये जाने के बाद एक कथक ने राजदरबार में अपना नाम भेजा। उसने कहानी शुरू की—

किसी गांव में कोई किसान रहता था। भाग्य से अच्छी वर्षा हुई और उसकी खेती खूब फूली-फली। फसल पक जाने पर उसने उसे काटा और एक बहुत बड़े खलिहान में भर दिया। खलिहान में अनाज भरकर वह चैन से रहने लगा।

लेकिन कुछ ही दिनों बाद एक टिड्डीदल खलिहान पर टूट पड़ा। हवा आने के लिए खलिहान की मोरी में से होकर एक टिड्डी प्रवेश करती और फुर्र से उड़ जाती।

राजा को लक्ष्य करके कथक ने कहा—महाराज ! सुनिए, एक टिड्डी उड़ी फुर्र, दूसरी टिड्डी उड़ी फुर्र, तीसरी टिड्डी उड़ी फुर्र, चौथी टिड्डी उड़ी फुर्र, पांचवी टिड्डी उड़ी फुर्र।

राजा ने पूछा—फिर क्या हुआ ?

"महाराज छठी टिड्डी उड़ी फुर्र, सातवी टिड्डी उड़ी फुर्र, आठवीं टिड्डी उड़ी फुर्र।"

"उसके बाद ?"

"नौवी टिड्डी उड़ी फुर्र" दसवी टिड्डी उड़ी फुर्र।"·· सौवीं उड़ी फुर्र।

---

१. आवश्यकचूर्णि, पृ० ५२२-२६।

इस प्रकार राजा ने जब देखा कि कथक टिड्डियों को उड़ाता ही चला जाता है, रुकने का नाम नहीं लेता, तो वह हार मानकर उसे आधा राज्य देने के लिये मजबूर हो गया।

तात्पर्य यह है कि कहानी में कुतूहल और जिज्ञासा की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए, तभी उसमें रोचकता आ सकती है।

१. जैन कथाकारों का उद्देश्य

जनपद विहार, जनभाषा, लौकिक कथा साहित्य

प्राचीन जैन ग्रन्थों में उल्लेख है कि जनपद विहार करने से जैन साधुओं की दर्शन विशुद्धि होती है, तथा महान् आचार्य आदि की संगति प्राप्त कर वे अपने को धर्म में दृढ़ रख सकते हैं। जनपद विहार करते समय उन्हें मगध, मालवा, महाराष्ट्र, लाट, कर्णाटक, द्रविड़, गौड और विदर्भ आदि की देशी भाषाओं से सुपरिचित होना चाहिए जिससे कि वे सर्वसाधारण को उनकी भाषाओं में उपदेश दे सकें।'[१] भगवान् महावीर ने भी स्त्री, बाल, वृद्ध तथा अक्षर ज्ञान से शून्य सर्व सामान्य जनता को अपने निर्ग्रन्थ प्रवचन का लोकभाषा अर्धमागधी में ही उपदेश दिया था।[२]

आगे चलकर जैन आचार्यों ने इसी परम्परा का अनुकरण करते हुए साहित्य का सर्जन किया। जन-कल्याण के लिए उन्होंने विविध कथाओं और आख्यानों का आश्रय लिया और प्राकृत में विपुल कथा-साहित्य का निर्माण कर जैन साहित्य के भण्डार को समृद्ध बनाया। वैदिक साहित्य में बहुत करके देवी देवताओं की अलौकिक कथा कहानियों की ही प्रधानता थी जिनसे सामान्यजन चमत्कृत तो अवश्य होता, किन्तु पात्रों के साथ वह आत्मीयता स्थापित नहीं कर पाता था। जैन विद्वानों ने इस दृष्टिकोण में परिवर्तन किया।

धर्मकथानुयोग की मुख्यता

दृष्टिवाद के पाँच विभागों में अनुयोग (दिगम्बर मान्यता के अनुसार प्रथमानुयोग) एक मुख्य विभाग है। इसके प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग इन चार प्रकारों में प्रथमानुयोग (अथवाधर्मकथानुयोग) को सबसे प्रमुख बताया गया है। प्रथमानुयोग अथवा धर्मकथानुयोग में सदाचारी,

---

१. बृहत्कल्पभाष्य, जनपदप्रकरण (१२२९-३०, १२३६)

२. अम्ह इत्थिबालबुइढअक्खरअयाणाणं अणुकंपणत्थं
सुव्वसत्तसमदरसीहिं अद्धमागहाए भासाते सुत्तं उद्दिट्ठं।

धीर एवं वीर पुरुषों का जीवन-चरित रहता है, अतएव जैनकथा-साहित्य की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है। जैन परम्परा में जिस विषयवस्तु का समावेश धर्मकथानुयोग में होता है, बौद्ध परम्परा में उसका समावेश सुत्तन्त अथवा सुत्तपिटक (दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय और खुद्दकनिकाय) में किया जाता है।

बौद्धसूत्रों की एक भविष्यवाणी में बौद्ध भिक्षु तथागत के अर्थ-गम्भीर, लोकोत्तर तथा शून्यता का प्ररूपण करने वाले उपदेश की अवहेलना कर तथागत के शिष्यों और कवियों के काव्यमय और सुन्दर वाक्य—विन्यास से अलंकृत लौकिक उपदेशों की ओर आकृष्ट हो रहे थे।'

इससे भी करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग की तुलना में धर्मकथानुयोग की लोकप्रियता लक्षित होती है। वैसे अध्यात्मविद्या, तत्त्वज्ञान, प्रमाणशास्त्र, योगविद्या, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, मन्त्रविद्या आदि कितने ही महत्त्वपूर्ण उपयोगी शास्त्र हैं, लेकिन जैन विद्वानों ने कथा-साहित्य के माध्यम से ही इनका प्ररूपण करना हितकर समझा। अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, संगीत, स्वप्न-विचार, रत्नपरीक्षा, मणिशास्त्र, खन्यविद्या और पाकशास्त्र आदि लौकिक विषयों, तथा शासनव्यवस्था के अन्तर्गत अपराध और दण्ड, सैन्यव्यवस्था, राजकरव्यवस्था; आर्थिकव्यवस्था के अन्तर्गत खेती-बाड़ी, वनिज-व्यापार, उद्योग-धन्धे; सामाजिक-व्यवस्था के अन्तर्गत जाति-पाति, स्त्रियों का स्थान, अध्ययन-अध्यापन, कला और विज्ञान, रीति-रिवाज, तथा धार्मिकव्यवस्था के अन्तर्गत श्रमण सम्प्रदाय, लौकिक देवी-देवता आदि की उपयोगी चर्चा भी प्राकृत जैन कथाग्रन्थों में की गयी है।

कथाओं के प्रकार

कथा के दो प्रकार बताये हैं—चरित (जिसमें महान् पुरुषों के यथार्थ चरितों का बणन हो) और कल्पित (जिसमें कल्पना—प्रधान कथाएँ हों)। स्त्री और पुरुष के भेद से दोनों के दो भेद हैं। धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कार्यों से सम्बद्ध दृष्ट, श्रुत और अनुभूत वस्तु का कथन चरित-कथा है। इसके विपरीत, कुशल पुरुषों द्वारा जिसका पूर्वकाल में उपदेश किया गया हो, उसकी अपनी बुद्धि से योजना कर कथन करना कल्पित-कथा है। चरित और कल्पित आख्यान अद्भुत, शृंगार और हास्यरसप्रधान होते हैं।[१]

अन्यत्र अर्थ, और काम की अपेक्षा पुरुषों के तीन प्रकार कहे गये हैं। अर्थ की अपेक्षा उत्तम पुरुष अपने पिता और पितामह द्वारा अर्जित धन का

---

१. वसुदेवहिंडी, पृ० २०८—९

उपभोग करता हुआ उसमें वृद्धि करता है, मध्यम पुरुष उसकी हानि करता और अधम पुरुष उसे खा-पीकर ठिकाने लगा देता है। धर्म की अपेक्षा, स्वयं-बुद्ध पुरुष को उत्तम और बुद्धों द्वारा बोधित पुरुष को मध्यम कहा गया है। काम की अपेक्षा दूसरे को चाहता है और दूसरा भी उसे चाहता है, उसे उत्तम, जिसे अन्य कोई चाहता है लेकिन चाहने वाले को वह नहीं चाहता उसे मध्यम, तथा जो अन्य किसी को चाहता है लेकिन अन्य उसे नहीं चाहता, उसे अधम पुरुष कहा गया है। [१]

दशवैकालिक निर्युक्ति में अर्थ, काम, धर्म और मिश्रित कथाओं के भेद से कथा के चार भेद बताये हैं। [२] हरिभद्रसूरि ने इस भेद को मान्य किया है। [३] किन्तु कुवलयमाला के कर्त्ता दाक्षिण्यचिह्न उद्योतनसूरि ने अर्थ और कामकथा के पूर्व धर्मकथा का उल्लेख कर धर्मकथा की प्रमुखता दी है। इसी रचना में अन्यत्र कथा के पांच प्रकार बताये गए हैं—सकलकथा, खण्डकथा उल्लापकथा, परिहासकथा तथा वरकथा। [४] कुवलयमाला को संकीर्ण कथा कहा गया है

---

१. वही पृ० १०१। तुलनीय शुकसप्तति (५७वीं कथा) की कथा से। यहाँ उत्तम मध्यम और अधम के निम्न लक्षण बताये गये हैं—

उत्तम—रक्तां यी भार्मियीं देवि ! सक्तां कामयते सदा।
तथापि काम्यतेऽत्यर्थमुत्तमः सोऽभिधीयते ॥३६५॥

मध्यम—कामिनीभिः स्मरार्ताभिः सततं काम्यते हि यः।
न तः कामयते नम्रो मध्यमो नायकः स्मृतः ॥२६४॥

अधम—हतो मन्युसहस्रैर्यः संतप्तो मदनाग्निना।

२. निर्युक्ति गाथा ३.१८८; हारिभद्रीवृत्ति, पृ० १०६।

३. समराइच्चकहा, भूमिका, पृ० ३, पण्डित भगवानदास संस्कृत-छायानुबाद सहित, १९३८।

४. ७;८, पृ० ४। हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन (८.५-८ पृ० ४६२-६५) में आख्यायिका, कथा, आख्यान, थिदर्शन, प्रवह्लिका, मन्थल्लिका, मणिकुल्या, परिकथा, खण्डकथा, सकलकथा, उपकथा और बृहत्कथा—ये कथा के भेद बताये हैं। साहित्यदर्पण (६.३३४-३५) में निम्नलिखित दस भेद पाये जाते हैं—आख्यायिका कथा, कथानिका, खण्डकथा, परिकथा; सकल-कथा, आख्यान, उपाख्यान, चित्रकथा और उपकथा। समराच्च कथा को सकलकथा कहा गया है। आख्यायिका ऐतिहासिक अथवा परम्परागत होती है जबकि कथा में कल्पना का प्राधान्य पाया जाता है। शृंगार प्रकाश के कर्ता भोजराज के बाण की कादम्बरी और कौतूहल की लीलावई को श्रेष्ठ कथाएँ कहा है। अन्य प्राकृत काव्यों में शूद्रककथा इन्दुमती (खण्डकथा), सेतुबन्ध गोरोचना, अनंगवती (मन्थुल्ली), चेटक (प्रवह्लिका), मारीचवध, रावण-विजय, अब्धिमन्थन, भीमकाव्य, हरिविजय का उल्लेख किया है। डाक्टर बी. राघवन, भोजराजशृंगार प्रकाश, पृ० ८१८, मद्रास, १९६३; काव्यानुशासन, ८.८, पृ० ४६३-६५।

क्योंकि इसमें समस्त कथाओं के लक्षण विद्यमान है।[१] हरिभद्रसूरि ने आचार्य परम्परागत दिव्य, दिव्य-मानुष्य कथाओं का उल्लेख किया है।[२] कौतूहल की लीलावई-कहा में भी कथाओं के इन प्रकारों का उल्लेख है जिसकी रचना महाकवियों ने संस्कृत, प्राकृत तथा संकीर्ण (संस्कृत-प्राकृत) भाषाओं में की है।[३] यहाँ व्याकरण (शब्दशास्त्र) को महत्व न देते हुए उसी कथा को श्रेष्ठ कहा है कि जिससे सरलता पूर्वक स्पष्ट अर्थ का ज्ञान हो सके।[४]

विकथाओं का त्याग

जान पड़ता है कि कालान्तर में शनैः शनैः धर्मकथा की ओर से विमुख होकर जैन श्रमण (बौद्ध भी) अशोभन कथाओं की ओर आकर्षित होने लगे जिससे आचार्यों को विकथाओं[५] स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा—से

---

१. कहीं कुतूहल से, कहीं परवचन से प्रेरित होने के कारण, कहीं संस्कृत में, कहीं अपभ्रंश में, कहीं द्राविड़ और पैशाची भाषा में रचित, कथा के सर्वगुणों से संपन्न, शृंगार रस से मनोहर, सुरचित अंग से युक्त, सर्व कलागम से सुगम कथा संकीर्णकथा है—

कोऊहलेण कत्थइ पर—वयण—वसेण सक्कय-णिबद्धा।
किंचि अवब्भंस—कया दाविय—पेसाय—भासिल्ला ।।
सव्व—कहा-गुण-जुत्ता सिंगार—मणोहरा सुरइयंगी।
सव्वकलागम—सुहया संकिण्ण-कहत्ति णायव्वा ।। कुवलयमाला ७, पृ० ४

२. समराइच्चकहा, पृ० ३

३. गाथा, ३५-३६।

४. मणियं च पिययमाए पिययम किं तेण सद्दसत्थेण।
जेण मुहासिय-मग्गो सग्गो अम्हारिस जणस्स ।।
उवलब्भइ जेण फुडं अन्थो अकयत्थिएण हियएण।
सो चेयं परो सद्दो णिच्चो किं लक्खणेणम्हं ।। ३९—४०।

५. विकथा का लक्षण—
जो संजओ पमत्तो रागद्दोसवसगओ परिकहेइ।
सा उ विकहा पययणे पण्णत्ता धीरपुरिसेहिं ।। दशवैकालिकनिर्युक्ति (३.२१, पृ०११३अ)
—जो कोई संवत मुनि प्रमत्त भाव से रागद्वेष के अधीन हुआ कथा कहता है, उसे प्रवचन में धीर पुरुषों ने विकथा कहा है।

दूर रहने का आदेश देना पड़ा।[१] बौद्धसूत्रों में कहा है कि बौद्ध भिक्षु उच्च शब्द करते हुए, महाशब्द करते हुए, खटखट शब्द करते हुए, राजकथा, चोरकथा, जनपदकथा, स्त्रीकथा आदि अनेक प्रकार की निरर्थक कथाओं में संलग्न रहते थे, जब कि गौतम बुद्ध ने इन कथाओं का निषेध कर दान, शील और भोगोपभोग त्याग संबंधी कथाएँ कहने और श्रवण करने का उपदेश दिया।[२]

दशवैकालिक नियुक्ति (२०७) में स्त्री, भक्त, राज, चोर, जनपद, नट, नर्तक जट्ट, (रस्सी पर खेल दिखाने वाले बाजीगर), और मुष्टिक (मल्ल) विकथाओं का उल्लेख है।[३] यहाँ जैन साधुओं को आदेश है कि उन्हें शृंगार रस से उद्दीप्त, मोह से फूत्कृत, जाज्वल्यमान मोहोत्पादक कथा न कहनी चाहिए। तो फिर कौनसी कथा वे कहें? वैराग्य से पूर्ण तप और नियम संबंधी कथाएँ, जिन्हें श्रवण कर संवेग निर्वेद भाव की वृद्धि हो। अर्थबहुल कथा का इस प्रकार कथन करना चाहिए जिससे कि कथा के बहुत लम्बी हो जाने से श्रोता को वह भारी न पड़े। अति प्रपंच वाली कथा से कथा का प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है, अतएव क्षेत्र, काल, पुरुष तथा अपनी सामर्थ्य को समझ-बूझकर निर्दोष कथा कहना ही उचित है।' ●

---

१. स्थानांग सूत्र में चार विकथाओं का और समवायांग (२९) में विकथानुयोग का उल्लेख है। तथा देखिए, निशीथ भाष्य (पीठिका-११८-३०)।

२. देखिए विनयपिटक, महावग्ग ५.७.१५, नालन्दा देवनागरी पालि ग्रन्थमाला, १९५६ तथा दीघनिकाय, सामञ्ञफलसुत्त (१—२), पृ० २५; पोट्ठापादसुत (१—९), पृ० ६७; महापदानसुत्त (२—१), १०७; उदुम्बरिकसीहनाद (३—२), पृ० २२६; राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी अनुवाद, १९३५।

३. बट्टकेर के मूलाचार (वाक्यशुद्धि-निरूपण) में स्त्री, अर्थ, भक्त, खेट, कर्वट, राज, चोर, जनपद, नगर और आकर कथाओं के नाम आते हैं।

(देवेंद्रसूरिकृत सदसंणा)

राजा-सम्प्रति

जैन धर्म की दिग्विजय

पहला परिच्छेद

बाल युवराज

प्रातःकाल का समय होने से दो घुड़-सवार प्रभात की शीतल-मन्द-सुगन्ध-मयी वायु सेवन करने के लिए नगर से बाहर चले जा रहे थे। उस समय क्षिप्रा नदी का निर्मल जल अपनी रुपहली चादर बिछाकर दर्शकों का ध्यान आकर्षित कर रहा था। एक ओर नदी का विशाल प्रवाह, दूसरी ओर विशाल तरुवरों से सुशोभित यह रमणीय प्रदेश उन अश्वारोहियों को आनन्द प्रदान कर रहा था। साथ ही वे अश्व भी मानो आनन्दमग्न होकर शीतल-मन्द वायु की लहरों का अनुभव करते हुए मन्द-मन्द गति से चले जा रहे थे। दोनों ही घोड़े एक से दिखाई देते थे। एक पर प्रौढ़ावस्था का पुरुष बैठा हुआ था, और दूसरे पर सात वर्ष का कुमार था। किन्तु सात वर्ष की अवस्था होते हुए भी उसकी स्फूर्ति अद्‌भुत थी। उसके बाल्यतेज का प्रभाव भी अपूर्व था। अर्थात् उसमें बालकोचित् उपद्रव, मस्ती और हुकुम देने की आदत आदि के अंकुर अभी से प्रकट होते दिखाई देते थे। वह उस प्रौढ़ व्यक्ति से वार्तालाप करते हुए नयी-बातें पूछता था।

"यह अवन्ती भी हमारे नगर के समान ही है। कितना सुन्दर नगर है ?" उस बालक ने आनन्दमय उद्‌गार व्यक्त किये।

"हाँ, युवराज ! यह नगर सुन्दर क्यों न होगा ? मालव-देश का तो यह तिलक ही माना जाता है। और उसमें भी यह अवन्ती सी उसकी राजधानी ही है ? श्री और समृद्धि एवं मालवे की सुन्दरता का यह नगर केन्द्रस्थान है।" प्रौढ़ पुरुष ने उत्तर दिया।

"पिताजी ने मुझे यहाँ भेजकर ठीक ही किया है। क्योंकि ऐसा आनन्द मुझे वहाँ अथवा अन्य कहीं भी नहीं मिल सकता था। मुझे नित्य ही यहां टहलने के लिये आना बहुत अच्छा लगता है। घोड़ा दौड़ाने, तलवार फिराने, तीर चलाने कुश्ती लड़ने आदि खेलों में भी मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है।" बालक ने फिर कहा।

"ठीक भी है युवराज ! तुम्हें युद्ध करने के खेल तो ध्यान देकर सीखना ही चाहिए ! उसी के साथ-साथ कुछ पढ़ने-लिखने का अभ्यास भी तुम्हें अब करना चाहिए। पुरुष के लिए तो कलम, कुड़छी—चम्मच और बर्छी, तीनों कलाओं में प्रवीण होना आवश्यक है।"

"पर, ये तीनों कलाएँ क्या हैं ? चाचाजी !"

"कलम अर्थात् पढ़ने-लिखने की कला, इसमें पुरुष को लिखना-पढ़ना अवश्य सीखना चाहिए। उसमें भी फिर तुम्हें तो अब विशेष शास्त्र का अभ्यास भी करना उचित है। क्योंकि जिसे राजा बनना हो वह यदि शिक्षित न हो, तो उसके राज्य-प्रबन्ध में अनेक त्रुटियां रह जाती हैं। विद्याध्ययन से बुद्धि विकसित होती है। साथ ही राज्य-प्रजा दोनों का हित समझ में आ सकता है। प्रबन्ध की त्रुटियों को सुधारा भी सकता है। राज्य और प्रजा की उन्नति में शास्त्र बड़ी ही सहायता करते हैं। इसी प्रकार कुड़छी या चम्मच का मतलब है पुरुष को रसोई भोजन बनाने की कला में भी प्रवीण होना चाहिए।

"पुरुष के लिए और रसोई बनाना ? यह काम तो स्त्रियों का है।" इस प्रकार कहते हुए बालक मुँह बनाकर हँसा और बोला "आप ऐसी ढीली-ढाली बातें क्यों करते हैं ? कोई शूर-वीरता की बातें कहिये; जिससे आनन्द प्राप्त हो !"

"यह भी ठीक है। बर्छी अर्थात् तलवार, भाला, तीर आदि फैंकने—चलाने का भी अभ्यास होना आवश्यक है। यह युद्ध कला भी तुमको दिखाई जा रही है जैसे-जैसे बड़े होते जाओगे वैसे-वैसे युद्ध में भी तुम पारंगत हो सकोगे ! इस प्रकार तुम निर्भय हो जाओगे ! अभी तुम बालक हो, इसीलिए कुड़छी-चम्मच का महत्त्व तुम्हारी समझ में नहीं आता। किन्तु प्रसंग आने पर इसका भी कितना महत्त्व है, इसे कोई-कोई ही समझ सकता है !"

"हाँ लड़ना-भिड़ना, मारपीट करना, दूसरों को दबादेना आदि काम तो मुझे अवश्य अच्छे लगते हैं और शस्त्रविद्या सीखने में मुझे कितना आनन्द प्राप्त होता है; इसका आपको कैसे पता लग सकता है ?"

"तो क्या शास्त्र का अभ्यास आपको अच्छा नहीं लगता ?"

"ऐसी बात तो नहीं है। मैं पढ़ूँगा, किन्तु....."

"तो ठीक है ! महाराज की आज्ञा प्राप्त कर तुम्हारी पढ़ाई आरम्भ कर देनी चाहिए ?"

"तब तो बहुत अच्छा होगा किन्तु इस नदी में हम जब स्नान करेंगे, तो पानी में खेलते हुए बड़ा आनन्द प्राप्त होगा।"

"किन्तु अभी भी हम स्नान कैसे कर सकते हैं ? अभी तुम्हें ठीक तरह से तैरना भी तो नहीं आता; और इस नदी का जल भी बहुत गहरा है।"

"तब तो मैं अवश्य स्नान करूँगा ! मुझे तैरना आता है। थोड़ी ही देर में नहा कर हम लौट चलेंगे। इस समय नहाने से बड़ा आनन्द प्राप्त होगा !" कुमार ने घोड़ा रोक दिया।

"युवराज ! आप स्नान भले ही करें किन्तु यहाँ जल के साथ खिलवाड़ करना ठीक नहीं उसमें भी यहाँ जल बहुत गहरा है। हम उधर घाट की तरफ चलें, वहाँ आपको स्नान करने में अधिक आनन्द प्राप्त होगा।

"अच्छी बात है। उधर ही चलिये।" युवराज ने घोड़े की लगाम मोड़ दी और उसके पीछे वह प्रौढ़ अश्वारोही भी चल दिया। किसी भी प्रकार से युवराज का चित्त प्रसन्न रखना उसका कर्त्तव्य था। राजकुमार की चाहे जैसी उद्धताई या मस्ती होने पर भी उसे समझा बुझा कर या दूसरी ओर उसका मन मोड़कर, हमेशा प्रसन्न रखते हुए उसकी मनोवृत्ति को सुधारना ही उस अश्वारोही का तथा अन्य अनेक पुरुषों का कर्त्तव्य-कर्म था। फिर भी बालयुवराज के संस्कार ही कुछ इस प्रकार के थे कि वह अपने आपको राजा और दूसरों को सेवक समझ कर किसी को भी महत्त्व नहीं देता था। अनेक स्त्रियाँ, दास-दासियाँ और पुरुष उसे प्रसन्न रखने के लिए निरन्तर आतुर रहते थे, और अपने सुन्दर शरीर एवं बालोचित आनन्दी स्वभाव के कारण वह प्रायः सभी स्त्री-पुरुषों के लिए अत्यन्त प्रिय हो गया था। दूसरी ओर उसके जीवन को किसी प्रकार की भी गर्म-आँच लगने पर उस एक के जीवन के पीछे हजारों जीवों का बलिदान हो जाने की बात भी वे जानते थे। इसी कारण कुछ तो राजभय से और कई स्नेहवश युवराज के जीवन की सुरक्षा के लिए सतत सावधान रहते थे।

वापस लौटते हुए अश्वारोही मन्दगति से नदी के घाट की ओर जा रहे थे। राजकुमार बीच-बीच में अनेक प्रकार के प्रश्न पूछता जाता था। अपनी बाल्य क्रीड़ा के अनुरूप अनेक कुतूहल करता हुआ कभी वह उस प्रौढ़ पुरुष का सिर भी पचा देता था। किन्तु नदी के घाट पर पहुँचते ही कुमार का विचार बदल गया। क्योंकि उस समय वहाँ हजारों मनुष्य आ-जा रहे थे। अनेक युवतियाँ पानी के

(क्रमशः)

प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य

(पूर्वानुवृत्ति)

किन्तु उक्त वृत्ति में अम्म और आम्रदेव के अभिन्न होने का कोई आधार नहीं मिलता है।[1]

इस ग्रन्थ की अनुमानतः १६वीं शताब्दी की हस्तलिखित प्रति खम्भात के विजयनेमिसूरि शास्त्र संग्रह में उपलब्ध है।[2]

(४) भवभावना

मलधारी आचार्य हेमचन्द्रसूरि द्वारा रचित इस ग्रन्थ का रचनाकाल विक्रम संवत् ११७० सन् ११२३ माना जाता है, ग्रन्थकर्त्ता ने इसमें १२ भावनाओं का विवेचन किया है। कृति में कुल ५३१ गाथाएँ वर्णित हैं। इसमें *हरिवंश का वर्णन सविस्तार मिलता है। कंस वृत्तांत, वसुदेव चरित, देवकी* वसुदेव विवाह, कृष्णजन्म, कंसवध, नेमिनाथ चरित आदि विविध प्रसंग इस ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय हैं। उक्त कृक्ति में हरिवंश की उत्पत्ति को दस आश्रयों में गिनाया गया है। इस प्रसंग पर दशार्ह राजाओं का उल्लेख है। कंस का वृतान्त, वसुदेव का चरित्र, चारुदत्त की कथा, देवकी का विवाह, कृष्ण का जन्म नेमिनाथ का जन्म, कंसवध, राजीमती का जन्म, नेमिनाथ के वैराग्य आदि का वर्णन करते हुए कवि ने स्थान-स्थान पर अपनी काव्य प्रतिभा का भी परिचय दिया है। कथानक में भरत चक्रवर्ती को आर्यवेदों का प्रवर्तक, तथा मधुपिंग और पिप्पलाद को अनार्यवेदों का कर्त्ता बताया गया है। वसुदेव ने इन दोनों का अध्ययन किया। इसमें वाचा, दृष्टि, निजूह (मल्ल-युद्ध) और शस्त्र इन चार प्रकार के युद्धों का उल्लेख है। मल्लों में निजूह-युद्ध, वादियों में वाक्युद्ध अधमजनों में शस्त्रयुद्ध तथा उत्तमपुरुषों में दृष्टियुद्ध होता है। रैवतक पर्वत पर बसन्तक्रीड़ा, जलक्रीड़ा, आदि का सुन्दर चित्रण है। १२ भावनाओं का इसमें सविस्तार से वर्णन करते हुए कवि ने अनेक सुभाषित दिए हैं जिनमें से कुछ द्रष्टव्य है —

जस्स न हिययंमि बलं कुणंति किं हंस तस्स सत्थई।
निअसत्थेणऽवि निहणं पावंति पहीणमाहप्पा॥

जिसके हृदय में शक्ति नहीं, उसके शस्त्र किस काम में आयेंगे? अपने शस्त्र होने पर भी क्षीण शक्ति वाले पुरुष मृत्यु को प्राप्त होते हैं।[3]

---

१. प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी वाराणसी—आख्यानमणिको, की भूमिका पृ० ४२

२. डॉ० गुलाबचन्द चौधरी, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ६, पृ० ७२

३. भवभावना, प्र० ऋषभदेवजी केशरीमलजी जैन श्वे० संस्था, रतलाम

पढमं वि आवयाणं चिन्तेव्यव्वो नरेण पडियारो।
न हि गेहम्मि पलित्ते अवहं खणिउं तरइ कोई।

—विपत्ति के आने के पूर्व ही उसका उपाय सोचना चाहिए। घर में आग लगने पर क्या कोई कुँआ खोद सकता है?

(५) उपदेशमाला (पुष्पमाला) प्रकरण

मलधारी आचार्य अपनी इस एक अन्य कृति के लिए भी प्रसिद्ध है, कृति के तप द्वार में वासुदेव के चरित का वर्णन हुआ है।[४]

प्रस्तुत कृति विषय, शैली और कवित्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। दान, शील, तप और भावना इन ४ विषयों पर कवि का विवेचन अधिक मार्मिक दृष्टिांतों के द्वारा विवेचित है। सुपात्रदान का फल अनेक दृष्टांतों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। शील द्वार में शील माहात्म्य के उदाहरण दिए गए हैं। तपद्वार में वसुदेव, दृढ़प्रहारो, विष्णुकुमार और स्कंदक आदि के चरित्र हैं। भावना के अंतर्गत सम्यकत्वशुद्धि आदि १४४ द्वारों का प्ररूपण है। इंद्रियज के उपदेश में ५ इंद्रियों के स्वरूप को समझाया गया है। कषाय निग्रह द्वार में कषायों के स्वरूपों का प्रतिपादन किया गया है। कुलवास-लक्षण द्वार में गुरु के गुणों का प्रतिपादन करते हुए शिष्य को विनीत बनने का उपदेश दिया गया है। उसे कहा गया है कि गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से प्रतिपालन करना चाहिए। गुरु के कुपित होने पर भी शीत रहना चाहिए। दोष-विघटन-लक्षण द्वार में आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत के भेदों से ५ प्रकार व्यवहार के बतलाये गये हैं। यहाँ आर्द्रकुमार का उदाहरण द्रष्टव्य है। विराग-लक्षण द्वार में लक्ष्मी को कुलटा नारी की उपमा दी गयी है। विनय लक्षण प्रतिद्वार में विनय का स्वरूप, स्वांध्याय-रति लक्षण द्वार में वैय्याबृत्य, स्वाध्याय और नमस्कार का माहात्म्य बतलाया गया है। अनायतन त्याग-लक्षण द्वार में कुसंग का फल, महिला संसर्ग के त्याग का प्रतिपादन है। पर-परिवाद निर्वृत्ति लक्षण में परदोष कथा को गर्हित कहा है। धर्म स्थिरता लक्षण द्वार में जिन पूजा आदि का महत्त्व दिखलाया गया है परिज्ञान लक्षण द्वार में आराधना की विधि का प्रतिपादन है। एक प्रकार से इस कृति में जैन आचार लक्षणों का प्रतिपादन हुआ है।

(६) कुमारपालपडिबोह (कुमारपालप्रतिबोध)

कुमारपालपडिबोह के रचनाकार सोमप्रभसूरि आचार्य विजयसिंह सूरि के शिष्य थे। कुमारपाल प्रतिबोध की रचना सन् ११८४ संवत् १२४१ की

---

४. उपदेशमाला प्रकरण, प्र० ऋषभदेवजी केशरीमलजी संस्था, रतलाभ सन् १९३६।

मानी जाती है। आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने गुजरात के राजा कुमारपाल को समय-समय पर जो शिक्षाएँ और उपदेश दिए; उनका इन्होंने व्यवस्थित संकलन तैयार किया और प्रस्तुत ग्रन्थ ने आकार ग्रहण कर लिया। इस ग्रन्थ में दृष्टांत रूप में ५४ कथाएँ भी कही गयी हैं। इसी क्रम में मदिरापान के घातक परिणाम बताते हुए द्वारका दहन की कथा वर्णित हुई है और तप की महत्ता प्रतिपादित करने के प्रयत्न में रुक्मिणी की कथा कही गई है।[१]

(७) कण्हचरित (कृष्णचरित)

प्रस्तुत कृति के रचनाकार देवेन्द्रसूरि जगत्चंद्रसूरि के शिष्य माने जाते हैं। जैन पुराणों में वर्णित कृष्णकथा को ही प्रस्तुत कृति में स्थान मिला है। कण्हचरित के रचनाकाल के विषय में इतिहास मौन है। किन्तु इस तथ्य से इस सम्बन्ध में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है कि रचनाकार देवेन्द्र-सूरि का स्वर्गवास सन् १२७० में हुआ था। कण्हचरित में कृष्णकथा की अतिव्यापक परिधि समाविष्ट है।[२] इसमें कोई संदेह नहीं है कि वसुदेव के पूर्वभव, कंस जन्म, वसुदेव का भ्रमण अनेक कन्याओं के साथ उनका पाणि-ग्रहण, कृष्ण जन्म, कंस-वध, द्वारका निर्माण, कृष्ण की अग्र महिषियाँ, प्रद्युम्न जन्म, जरासंध के साथ युद्ध, नेमिनाथ और राजीमती के विवाह की चर्चा आदि अनेक प्रसंग चित्रित हुए हैं। इन मुख्य कथासूत्रों के साथ-साथ कतिपय गौण प्रसंग भी इस कृति के विषय बने हैं। जैसे—कृष्ण बलदेव के पूर्वभव, पाण्डवों का वर्ण, द्रौपदीहरण व श्रीकृष्ण द्वारा उसका उद्धार, गजसुकुमार चरित, थावच्चापुत्र का वृत्तांत, श्रीकृष्ण के देहावसान पर बलदेव का विलाप और नेमिनाथ का वर्णन आदि।[३]

अस्तु, उपयुक्त कुछ ऐसी रचनाएं हैं जो स्वतन्त्र व प्राकृत में रचित हैं और जिनसे श्रीकृष्ण के जीवन और चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। आगमेतर साहित्य के अंतर्गत परिगणित होती है। आगमेतर साहित्य के अन्तर्गत ही आगमों की टीका, भाष्यादि व्याख्यात्मक ग्रन्थ भी माने जाते हैं।

---

१. कुमारपाल पडिबोह (कुमारपाल प्रतिबोध) सम्पा० मुनि जिनविजय जी, सन् १९२० में ओरिएण्टल गायकवाड सीरिज में प्रकाशित—बड़ौदा, गुजराती अनुवाद—प्र० आत्मानन्द सभा, बंबई।

२. कण्हचरित—ले० देवेंद्र सूरि, प्र० केशरीमल संस्था, रतलाम, सन् १९३०

३. कण्ह चरित—ले० देवेंद्र सूरि, प्र० केशरीमल संस्था, रतलाम, सन् १९३०

इनका सम्बन्ध इनके मूल आगम ग्रन्थों से ही है और रचनाकार उसी सीमा में बद्ध रहे हैं। अत: इन्हें स्वतन्त्र साहित्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। ऐसे व्याख्यात्मक, साहित्यिक भाग में भी कतिपय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं, जिनमें श्रीकृष्ण चरित की महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार की उल्लेखनीय स्थान प्राप्त कतिपय रचनाएं हैं—

(१) कथाकोष प्रकरण।

(२) कथारत्न कोष।

(३) आख्यानमणि कोष आदि।

इन रचनाओं में श्रीकृष्ण जीवन सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रसंग की सामग्री यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है।

इस तरह यह देखा जा सकता है कि आगम जैन कृष्ण साहित्य में समग्र कृष्ण जीवन चरित में से कृष्ण जीवन के कुछ प्रमुख प्रसंग ही जैन कृष्ण साहित्य के विवेच्य विषय बने हैं।

□●□

सौजन्य से :

BOYD SMITHS PVT. LTD.

B-3/5, GILLANDAR HOUSE

8, Netaji Subhas Road,

Calcutta-700 001

Phone Office : 220-8105/2139

Resi. : 244-0629/0319

संकलन

विविधता में आनन्द

आपने उद्यान देखा होगा। विविध प्रकार के पेड़-पौधे होते हैं वहाँ। अनेक प्रकार के फूल खिलते हैं वाटिका में। यह विविधता ही उद्यान का सौंदर्य है। विविधता सौन्दर्य में अभिवृद्धि करती है।...आप जाते हैं न, बगीचे में घूमने! घूमने कहाँ जाते हैं आप? आपके दिमाग पर इतना बोझ लदा होता है कि शरीर भले ही घूम जाए उद्यान में लेकिन आप चिन्ताओं के घेरे में घूमते रहते हैं।...नहीं, ऐसे मत घूमिए। उद्यान में भलीभाँति देखते हुए घूमिए! फूलों की विविधता देखिए, आकाश में उड़ते पक्षियों के अलग-अलग रूप देखिए। प्रकृति की विविधता में भी एक विशिष्ट आनन्द की झलक है। अगर एक ही प्रकार के फूल होते, पक्षी होते तो हम उदास हो जाते। खाने में भी एक ही प्रकार की सामग्री हो तो भोजन रुचिकर नहीं लगता। प्रातः, मध्याह्न तथा सायं के भोजन में मात्र श्रीखंड ही हो तो भोजन रुचेगा नहीं। यही क्रम दो-तीन दिन तक प्रारम्भ रहे तो आप पत्नी से कहेंगे—"क्या दिमाग खराब हो गया है?" पटक देंगे आप थाली, भाग जायेंगे खाना छोड़कर..। ऐसा करते हैं आप? नहीं, ऐसा कभी मत करना। कभी अनाज पर रोष मत निकालना। न पत्नी पर, न परिवार पर। अस्तु।

मैं कहना चाहती थी आपसे कि प्रकृति की विविधता में कितना सौन्दर्य है। वृक्ष पर एक ही शाखा, एक ही पत्ता और एक ही फूल हो, तो क्या सुन्दर लगेगा? वृक्ष की अनेक शाखाएँ हों, उन शाखाओं में से फिर प्रशाखाएँ प्रस्फुटित हुई हों, असंख्य पत्ते हों तथा फूलों से भरा हो तब वृक्ष की सुन्दरता सभी का मनहरण कर लेगी। उद्यान का कोई कोना मोगरे से, कोई गुलाब तथा कोई केवड़े से सुरभित हो रहा हो तो आपका मन पुलकित हो उठेगा! बार-बार जी चाहेगा वहाँ जाने के लिए! चतुर्दिक फैलती सुरभि से आपका जीवन तथा तनमन भी सुरभित हो उठेंगे।

—आचार्य श्री चन्दना

साभार : श्री अमर भारती-

WB/NC-330
Vol. XX No. 8 TITTHAYARA December 1996
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77